UNIVERSAL LIBRARY

OU_180858

UNIVERSAL LIBRARY

नये पत्ते

निराला

हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स,
शाहगंज, इलाहाबाद

प्रथमावृति] मार्च १९४६ [मूल्य २)

प्रकाशक—
गयाप्रसाद तिवारी, बी० काम०,
अध्यक्ष हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स,
शाहगंज, इलाहाबाद ।

मुद्रक—
गयाप्रसाद तिवारी, बी० काम०,
अध्यक्ष नारायण प्रेस, नारायण बिल्डिंग्स,
शाहगंज, इलाहाबाद ।

प्रस्तावना

'नये पत्ते' इधर के पद्यों का संग्रह है। सभी तरह के आधुनिक पद्य हैं, छन्द कई, मात्रिक, सम और असम। हास्य की भी प्रचुरता, भाषा अधिकांश में बोलचालवाली। पढ़ने पर काव्य की कुञ्जों के अलावा ऊँचे-नीचे फ़ारस-के-जैसे टीले भी। अधिक मनोरञ्जन और बोधन की निगाह रक्खी गई है कि पाठकों का श्रम सार्थक हो और ज्ञान बढ़े। वे अपनी भाषा की रूपरेखाएँ देखें। इति।

प्रयाग,
७—३—४६

सविनय
'निराला'

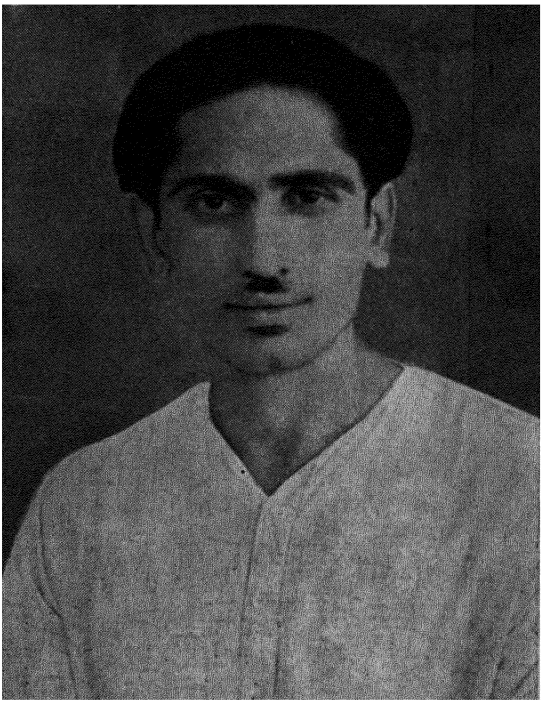

श्रीगङ्गा प्रसाद पाण्डेय, एम० ए०

कृती-कवि-लेखक

श्रीगङ्गा प्रसाद पाण्डेय, एम० ए० को

सस्नेह

विषय-सूचिका

नं०	नाम	पृष्ठ
१	रानी और कानी	६
२	खजोहरा	११
३	मास्को डायेलाग्स	१८
४	आंख आंख का कांटा हो गई	२०
५	थोड़ों के पेटे में बहुतों को आना पड़ा	२२
६	राजे ने अपनी रखवाली की	२४
७	खुशख़बरी	२६
८	दग़ा की	२८
९	चखौ चला	३०
१०	पांचक	३२
११	तारे गिनते रहे	३३
१२	खेल	३५
१३	गर्म पकौड़ी	३७
१४	प्रेम-संगीत	३९

नं०	नाम	पृष्ठ
१५	स्फटिक-शिला	४१
१६	कुत्ता भौंकने लगा	५४
१७	भींगुर डट कर बोला	५६
१८	देवी सरस्वती	५८
१९	तिलाञ्जलि	७४
२०	युगावतार परमहंस श्रीरामकृष्ण देव के प्रति	७९
२१	चौथी जुलाई के प्रति	८१
२२	काली माता	८३
२३	छलांग मारता चला गया	८५
२४	डिप्टी साहब आये	८७
२५	वर्षा	८९
२६	कैलाश में शरत्	९१
२७	खून की होली जो खेली	९७
२८	महगू महगा रहा	९९

———

रानी और कानी

माँ उसको कहती है रानी
आदर से, जैसा है नाम;
लेकिन उसका उल्टा रूप,
चेचक के दाग़, काली, नक-चिप्टी,
गंजा सर, एक आँख कानी।

रानी अब हो गई सयानी,
बीनती है, कांड़ती है, कूटती है, पीसती है,
डलियों के सीले अपने रूखे हाथों मीसती है,
घर बुहारती है, करकट फेंकती है,
और घड़ों भरती है पानी;

फिर भी माँ का दिल बैठा रहा,
एक चोर घर में पैठा रहा,
सोचती रहती है दिन-रात
कानी की शादी की बात,
मन मसोसकर वह रहती है
जब पड़ोस की कोई कहती है—
"औरत की ज़ात रानी,
ब्याह भला कैसे हो
कानी जो है वह!"
सुनकर कानी का दिल हिल गया,
काँपे कुल अङ्ग,
दाईं आँख से
आँसू भी बह चले माँ के दुख से,
लेकिन वह बाईं आँख कानी
ज्यों-की-त्यों रह गई रखती निगरानी।

खजोहरा

दौड़ते हैं बादल ये काले काले,
हाईकोर्ट के वकले मतवाले।
जहाँ चाहिए वहाँ नहीं बरसे,
धान सूखे देखकर नहीं तरसे।
जहाँ पानी भरा वहाँ छूट पड़े,
क़हक़हे लगाते हुए टूट पड़े।
फिर भी यह बस्ती है मोद पर
नातिन जैसे नानी की गोद पर;
नाम है हिलगी, बनी है भूचुम्बी
जैसी लौकी की लम्बी तुम्बी।

कच्चे घर ऊबड़खाबड़, गन्दे
गलियारे, बन्द पड़े कुल धन्धे।
लोग बैठे लेते हैं जमहाई,
ठंडी - ठंडी चलती है पुरवाई।
ख़रीफ निराई जा चुकी है, नहीं
करने को रहा कोई काम कहीं।
बारिश से बढ़ी ज्वार, बाजरा, उर्द,
गाँव हरे-भरे कुल, कलां और ख़ुर्द।
लोग रोज़ रात को आल्हा गाते
ढोलक पर, अपना जी बहलाते।
झूला झूलती गाती हैं सावन
औरतें, "नहीं आये मनभावन।"
लड़के पैंगे मारते हैं बढ़ - बढ़कर
गूँज रहा है भरा हुआ अम्बर।
सावन में भतीजा होने को हुआ
पहले से बुला लाई गईं बुआ।
नैहर में घूंघट के उठने से
बुआ जी की जान बची छुटने से।
ब्याह के पहले के प्यारे - प्यारे
गाँव के नज़्ज़ारे जग गये सारे।
याद आईं सहेलियाँ, साथी कुल;
तरह-तरह की हुईं रंगरेलियाँ कुल।

मुन्नी - मुन्ने जितने हैं चुन्नी - चुन्ने,
आँखों पर फिरते हैं सभी टुन्नी-टुन्ने।
कोई नहीं, लड़कियाँ गईं ससुराल,
लड़के गये बढ़कर परदेस, यह हाल।
मगर दिल बहलाने के लिए फिलहाल
बुआ नहाने चलीं वह बाग़ का ताल।
पिछला पहर दिन का, पीली पड़ी धूप;
सारे गांव का हुआ सुनहला रूप।
सब्ज़े - सब्ज़े पर सोने का पानी चढ़ा,
हुस्न और जमाल जैसे और बढ़ा।
गाँव के किनारे निकल आईं बुआ,
बँधी जगतवाला दांयें मिला कुआ।
नीम से लगा कच्चा चबूतरा,
टिन्ना बैठा काट रहा था दोहरा।
देखकर बुआ को मुस्कराया, पूछा—
"अकेली-अकेली कहां चलीं बुआ?"
गुस्सा आया, बुआ कांपने लगीं,
गालियों से गला नापने लगीं।
आगे बढ़ीं, चढ़े अबरू ख़मदार,
स्वाभिमान से पड़े पहलू दमदार।
बाईं बग़ल कुछ आगे बढ़ीं कि पड़ी
गाँव के किनारे की बड़ी गड्ही।

भरी हुई किनारे तक, उमड़ चली,
बहती हुई गाँव के नाले से मिलीं।
मेढक एक बोलता है जैसे सुकरात,
दूसरा फ़लातूं सुन रहा है बात।
तेज़ हवा से पछांह को झुके
ज्वार के पौधे सिपाही जैसे दिखे।
बनबिलाव मार्लबरौ जैसा अड़ा,
घोंसले के पास गूलड़ पर चढ़ा।
इसी वक्त बिल से लोमड़ी निकली,
इधर - उधर देखती आगे बढ़ी।
भुजैल एक बोलती है "परिडतजी"
मेड़ के किनारे चुगती है पिड़की।
सतभैये एक पेड़ के नीजे
दूसरी पार्टी से लड़ाते हैं पंजे।
एक डाल पर बैठी हुई रुकमिन
बुआ को याद आये पी से मिलनेके दिन।
एक पेड़ पर बये की झोंझें दिखीं
अलग-अलग झूले जैसी कितनी लटकीं।
एक तरफ़ भगा हुआ मोर गया,
झाड़ी से चौगड़ा कूदता निकला।
दूर चला जाता है हिरनों का झुंड,
भैसों के लेवारेवाला मिला कुंड।

दौड़कर बबूल पर चढ़ा गिरदान,
देखा बुआ ने भवों की तिरछी बान।
चौतरफ़ा आम के पेड़ों से घिरा,
बुआ को नहानेवाला ताल मिला।
कितना पुराना, किसका खोदाया हुआ,
गाँव के किसीको यह मालूम न था।
बांध ताल के, बारिश से छटकर,
ढाल में अब बदल गये थे कटकर।
मिट्टी भर जाने से ताल उथला था,
डूबने से लोगों को बचाता रहा।
किनारे-किनारे लगे आम के पेड़,
दूर से उठाई ऊँची-ऊँची मेड़।
मिट्टी के सबब दूध-ऐसा था पानी
खुश होकर बुआ ने नहाने की ठानी।
उतरीं जैसे ठाकुर की विजयिनी हों
जिसके दिल में नहीं आज-कल-परसों;
एक प्रेम हो एड़ी से चोटी तक,
जिसको चहती हैं दुबली से मोटी तक।
बुआ ताल में पैठीं जैसे हथनी,
डर के मारे कांपने लगा पानी;
लहरें भगीं चढ़ने को किनारे पर,
बांधा पानी बुआ ने बाहों से भरकर।

नीव के खम्भे हों, पैर कीच में हैं;
जांघ से छाती तक अङ्ग बीच में हैं।
सोचा, कभी नहाती थीं दिन-दिन भर,
लड़कियों को गाड़ती थीं गिन-गिनकर।
विजय का मद आया कि देखे भुजदण्ड,
पहले से और चढ़े हुए, और प्रचंड।
सांस ली बुआ ने, तेज़ चली हवा,
झोंका पुरवाई का एक आ लगा।
बुआ के ऊपर की आम की जो डाल
झोंके से पुरवाई के हिली तत्काल।
क्षमा मागने को मदन जैसा बैठा
डाल पर बड़ा-सा खजोहरा था;
रोयां हर एक उसका तीर फूल का था
सुन्दरी की ओर को तना हुआ।
बुआ के कन्धे पर टूटकर आया,
चाँटे के पड़ते ही पिलौधा हुआ;
रोएँ आये कन्धों, हथेलियों पर,
बांहों पर, पानी पर, बहेलियों पर
जहां जहां गड़े, ज़ोर की खुजली
उठी, बुआ ताल के बाहर निकलीं
निकलते, कुल अंगों में पानी के साथ
फैली. खजलाने लगीं वे दोनों हाथ

एक छन में जलन सौगुनी बढ़ी,
बुआ जैसे अंगारों पर हों खड़ी;
धोती बदलनी थी, पर न बदल सकीं,
मात नील गाय को करती वे भगीं।
अँधेरा हो आया था, इतनी भलाई,
कोई उनकी न देख पाया भगाई।
चौकड़ी उठाती गाँव को आई,
दरवाज़े "अम्मा" की आवाज़ें लगाईं।
अम्मा ने जल्द आकर दरवाज़ा खोला,
पूछा, "अरी बिट्टो, तुमको क्या हुआ?"
बुआ ने कहा, 'मुआ खजोहरा
नहाते-नहाते मुझको लग गया।"
घी ले आई अम्मा, पूछा, 'कहाँ लगे?"
बुआ ने कहा कि नहीं बची जगह।

मास्को डायेलाग्स

मेरे नये मित्र हैं श्रीयुत गिडवानी जी,
बहुत - बड़े सोश्यलिस्ट,
"मास्को डायेलाग्स" लेकर आये हैं मिलने।
मुस्कराकर कहा, "यह मास्को डायेलाग्स है,
सुभाष बाबू ने इसे जेल में मँगाया था,
भेंट किया था मुझको जब थे पहाड़ पर।
'३५ तक, मुश्किल से पिछड़े इस मुल्क में
दो प्रतियाँ आई थीं।"
फिर कहा, "वक्त नहीं मिलता है,
बड़े भाई साहब का बंगला बन रहा है,
देखभाल करता हूँ।"

फिर कहा, "मेरे समाज में बड़े-बड़े आदमी हैं,
एक - से हैं एक मूर्ख;
उनको फसाना है,
ऐसे कोई साला एक धेला नहीं देने का।
उपन्यास लिखा है,
ज़रा देख दीजिए।
अगर कहीं छप जाय
तो प्रभाव पड़ जाय उल्लू के पट्ठों पर;
मनमाना रुपया फिर ले लूं इन लोगों से;
नये किसी बंगले में एक प्रेस खोल दूँ;
आप भी वहीं चलें,
चैन की बंसी बजे।"
देखा उपन्यास मैंने.
श्रीगणेश में मिला—
"प्रिय असनेहमयी स्यामा मुझे प्रेम है।"
इसको फिर रख दिया, देखा "मास्को डायेलाग्स",
देखा गिडवानी को।

आंख आंख का कांटा हो गई

मुहोमुह रहे
एक पेड़ पर दो डालों के कांटे जैसे
अपनी - अपनी कली तोलते हुए।
हर्फ़ न आया;
हवा, पानी और रौशनी के लिए पहले हुए;
साथियों को हाथ मारा;
रस खींचा।
सर उठाये बढ़े चले।
हवा में गिरह लगाई,
बहुत झेला, बहुत झूमे।

एक तने से कटे,
एक डाल से छूटे।
पत्तियों की हथेलियां हिलाईं,
राहियों को बुलाया,
छाह में बैठालकर तंग नसें ढीली कीं;
फिर बुख़ार उतारा;
राही जगा,
अपना रास्ता लिया।
आँख आँख का काँटा हो गई।

थोड़ों के पेटे में बहुतों को आना पड़ा

धूहों और गुफाओं और पत्थरों के घरों से
आजकल के शहरों तक, दुनियाँ ने चोली बदली।
बिजली और तार और भाप और वायुयान
उसके वाहन हुए।
जान खींची खानों से
कल और कारख़ानों से।
रामराज के पहले के दिन आये।
बानिज के राज ने लछमी को हर लिया।
टापू में ले चलकर रखा और क़ैद किया।
एक का डंका बजा,
बहुतों की आंख झपी।

लहलही धरती पर रेगिस्तान जैसा तपा।
जोत में जल छिपा,
धोखा छिपा, छल छिपा।
बदले दिमाग़ बढ़े,
ग़ोल बांधे, घेरे डाले,
अपना मतलब गांठा,
फिर आंखें फेर लीं।
जाल भी ऐसा चला
कि थोड़ों के पेटे में बहुतों को आना पड़ा।

राजे ने अपनी रखवाली की

राजे ने अपनी रखवाली की;
क़िला बनाकर रहा;
बड़ी-बड़ी फ़ौजें रखीं।
चापलूस कितने सामन्त आये।
मतलब की लकड़ी पकड़े हुए।
कितने ब्राह्मण आये
पोथियों में जनता को बाँधे हुए।
कवियों ने उसकी बहादुरी के गीत गाये,
लेखकों ने लेख लिखे,
ऐतिहासिकों ने इतिहासों के पन्ने भरे,
नाट्यकलाकारों ने कितने नाटक रचे,
रङ्गमञ्च पर खेले।

जनता पर जादू चला राजे के समाज का।
लोक-नारियों के लिए रानियाँ आदर्श हुईं।
धर्म का बढ़ावा रहा धोखे से भरा हुआ।
लोहा बजा धर्म पर, सभ्यता के नाम पर।
खून की नदी बही।
आँख-कान मूदकर जनता ने डुबकियाँ लीं।
आँख खुली—राजे ने अपनी रखवाली की।

ख़ुश-ख़बरी

तबला दोनों हाथ आया हथियार,
दरबारी वीर - राग छाया रहा।
सुब्होशाम किरन जैसे तार पर
जीवन-संग्राम हमारा छिड़ा।
सत्य सिनेमा की नटी से नाचा,
पूरब का पाया हिला पश्चिम से,
दुश्मन की जान आई आफ़त में,
गली - गली गले के गोले दगे।

क़ैद पासपोर्ट की नहीं तो कभी
देश आधा ख़ाली हो गया होता;
देविकारानी और उदयशङ्कर के
पीछे लगे लोग चले गये होते।

दग़ा की

चेहरा पीला पड़ा।
रीढ़ झुकी। हाथ जोड़े।
आँख का अँधेरा बढ़ा।
सैकड़ों सदियां गुज़रीं।
बड़े-बड़े ऋषि आये, मुनि आये, कवि आये,
तरह तरह की वाणी जनता को दे गये।
किसीने कहा कि एक तीन हैं,
किसीने कहा कि तीन तीन हैं।
किसीने नसें टोईं, किसीने कमल देखे।
किसीने विहार किया, किसीने अंगूठे चूमे।
लोगों ने कहा कि धन्य हो गये।

मगर खंजड़ी न गई।
मृदङ्ग तबला हुआ,
वीणा सुर-बहार हुई।
आज पियानो के गीत सुनते हैं।
पौ फटी।
किरनों का जाल फैला।
दिशाओं के होंठ रंगे।
दिन में वेश्याएं जैसे रात में।
दग़ा की इस सभ्यता ने दग़ा की।

चर्ख़ा चला

वेदों का चर्ख़ा चला,
सदियां गुज़री।
लोग - बाग बसने लगे,
फिर भी चलते रहे।
गुफ़ाओं से घर उठाये।
ऊँचे से नीचे उतरे।
भेड़ों से गायें रखीं।
जंगल से बाग़ और उपवन तैयार किये।

खुली ज़बां बंधने लगी।
वैदिक से सँवर - दी भाषा संस्कृत हुई।

नियम बने, शुद्ध रूप लाये गये,
अथवा जंगली सभ्य हुए वेशवास से।
कड़े कोस ऐसे कटे।
खोज हुई, सुख के साधन बढ़े—
जैसे उबटन से साबुन।
वेदों के बाद जाति चार भागों में बंटी,
यही रामराज है।
वाल्मीकि ने पहले वेदों की लीक छोड़ी,
छन्दों में गीत रचे, मन्त्रों को छोड़कर,
मानव को मान दिया,
धरती की प्यारी लड़की सीता के गाने गाये।
कली ज्योति में खिली
मिट्टी से चढ़ती हुई।
"वर्जिन स्वैल", "गूड अर्थ", अबके परिणाम हैं।
कृष्ण ने भी ज़मी पकड़ी,
इन्द्र की पूजा की जगह
गोवर्धन को पुजाया;
मानवों को, गायों और बैलों को मान दिया।
हल को बलदेव ने हथियार बनाया,
कन्धे पर डाले फिरे।
खेती हरीभरी हुई।
यहाँ तक पहुँचते अभी दुनियां को देर है।

पांचक

दीठ बँधी, अंधेरा उजाला हुआ,
सेंधो का ढेला, शकरपाला हुआ ॥ १ ॥
अपनी राह लगे, नेता काम आया,
हाथ मुहर है, मगर छुदाम आया ॥ २ ॥
आदमी हमारा तभी हारा है,
दूसरे के हाथ जब उतारा है ॥ ३ ॥
राह का लगान ग़ैर ने दिया,
यानी रास्ता हमारा बन्द किया ॥ ४ ॥
माल हाट में है और भाव नहीं,
जैसे लड़ने को खड़े, दाव नहीं ॥ ५ ॥

तारे गिनते रहे

राज-चेतना की राह रोककर
लोग खड़े हुए, कामयाब हुए।
दुश्मनों के पैर न जमने दिये।
आपस में मिले रहे, ज़बांदराज़ी न की।
लोक की, समाज की लाज रखी,
बढ़े चले।

राज में बेकारों की आख़िरी साँसें रहीं।
ज़मींदार चाँद जैसे कर के लिए लगे रहे
देश के आकाश पर,
कपड़े की ज़मी पर।
दूसरे प्रकाश के लिए जैसे चोला पाया।

मेह जैसे तने रहे,
टपके भी, बरसे भी।
बालों के नीचे पड़ी जनता बलतोड़ हुई।
माल के दलाल ये वैश्य हुए देश के।
सागर भरा हुआ,
लहरों से बहले रहे;
बानिज की राह खोई।
किरनें समन्दर पर कैसी पड़ती दिखीं!
लहरों के झूले झूले,
कितना विहार किया क़ानूनी पानी पर;
बँधे भी खुले रहे।
रात आकाश के तारे गिनते रहे!

खेल

जेठ की दुपहर, दिवाकर प्रखरतर,
जली है भू, चली है लू भासकर।
राह निर्जन, मन्द चितवन से खड़ा
एक लड़का, बना है छड़का कड़ा।
उम्र नौ-दस-साल की, बस, तोलता
दिल की चढ़कर पकरिये पर बोलता।
तना मोटा था, पड़ा छोटा सुकर,
बांह से भरकर चढ़ा, आया उतर।

डाल देखी, चढ़ा ऊपर पकड़कर,
दम लिया कुछ देर बैठा अकड़कर।
शाख़ पर चढ़ता हुआ, ऊपर गया,
नाक बैठाकर निकाला स्वर नया,
"भूत हों जितने जहाँ जमदूत हों,
अब हमारा घर भरें वे खारुओं।"

गर्म पकौड़ी

गर्म पकौड़ी—
ऐ गर्म पकौड़ी।
तेल की भुनी,
नमक-मिर्च की मिली,
ऐ गर्म पकौड़ी!

मेरी जीभ जल गई,
सिसकियाँ निकल रहीं,
लार की बूंदें कितनी टपकीं,
पर दाढ़ तले तुझे दबा ही रक्खा मैंने
कंजूस ने यों कौड़ी।

पहले तूने मुझको खींचा,
दिल लेकर फिर कपड़े-सा फींचा,
अरी, तेरे लिए छोड़ी
बम्हन की पकाई
मैंने घी की कचौड़ी।

प्रेम-संगीत

बम्हन का लड़का
मैं उसको प्यार करता हूं।

ज़ात की कहारिन वह,
मेरे घर की है पनहारिन वह,
आती है होते तड़का,
उसके पीछे मैं मरता हूँ।

कोयल-सी काली, अरे,
चाल नहीं उसकी मतवाली,
व्याह नहीं हुआ, तभी भड़का

दिल मेरा, मैं आहें भरता हूँ।
रोज़ आकर जगाती है सबको,
मैं ही समझता हूँ इस ढब को,
ले जाती है मटका बड़का,
मैं देख-देखकर धीर

स्फटिक-शिला

स्फटिक-शिला जाना था।
रामलाल से कहा।
उमड़ पड़े रामलाल।
बोले, "कुछ रुकिए, फ़िलहाल
गाड़ी तैयार नहीं;
यार, कहीं
ठोकर खा जाइएगा।
कौन कहे, सही-हाथपैर लौट आइएगा।
कई नाले पड़ते हैं।
चढ़ते हैं, उतरते हैं।
नौजवाँ, देहाती, पहलवां

थकते हैं;
तन्दुरुस्त छकते हैं।
गाड़ी से चलेंगे।
दर्द कहीं बढ़ा तो मलेंगे
पैर।
आदमी भी साथ हैं।" "ख़ैर",
मैंने कहा, "चलने की कहीं,
और देखे हैं पैर।
अपना भी होगा यों ग़ैर?"
गाड़ी आई,
ख़य्याम की जैसी हो रुबाई।
आधी रात को चढ़े
चित्रकूट को बढ़े।
मिला क़िला पेशवों का करवी में
लिखा हुआ जैसे कुछ अरबी में,
रात को ऐसा दिखा
क़िस्मत में जैसे कुछ हो लिखा।
पयस्विनी नदी पड़ी
जैसे लाज से गड़ी।
पानी थोड़ा-थोड़ा सा।
गड्ढा जैसे रोड़ासा
मेरे मन में। पूछा

रामलाल से, "जो कुछ भी दिखता है, छंछा,
ऐसा ही भरा है ?"
"जीता है कौन, कौन मरा है,
मुझको मालूम नहीं,
लेकिन यह है सही—
स्फटिक-शिला में नदी
बहुत काफ़ी गहरी है
और बहुत चौड़ी भी
हालांकि जगह वह यहाँ से बहुत ऊँची है,
मगर वहाँ रहते हैं,"—
रामलाल ने कहा। (ऐसा ही कहते हैं।)
बैल दो थे, सांवलिया
और धौला। धौला गरियार था।
बायें जुता। अक्सर चलती-चलती
गाड़ी मुड़ जाती थी बुरी तरह बायें को।
पूंछ ऐंठकर धौले को फिर - फिर दायें को
हांकता था रामलाल का भाई
ता-ता-ता-ता करता। शहनाई
सुनकर मैं हंसता था।
ढाल से उतरकर वह बैल वहां धंसता था
इसी समय दलदल में
बायें मुड़ा।

पानी की कलकल में
रामलाल डूबे हुए
यानी बहुत ऊबे हुए।
बैल डालकर जुआ
भग खड़ा हुआ।
बच्चे को बड़े आदमी जैसा
देखता था सांवलिया
जुआ डालकर वहीं खड़ा।
धौले की ओर को चुमकारता बढ़ा
रामलाल का भाई। कड़े हाथ
पकड़ ली धौले की ऐंठी नाथ।
जुए को फिर मोड़कर,
उतरे हुए लोगों की मदद से छोड़कर
राह पर,
बैलों को फिर जोता।
चला धौला अपनी ही पुरानी चाल फिर रोता।
नदी को पारकर
गाड़ी आई राह पर।
स्यारों की जोड़ी मिली।
कहीं कोई झाड़ी खिली
रही होगी, .खुशबू से
जान पड़ा। लोग बैठे जैसे चूसे

दमड़ी के आम हो,
गीले फिर भी, जैसे हों मास सावन या भादों।
राम - राम जपते थे,
काम से यों तपते थे।
मिलीं और गाड़ियाँ
करवी को जाती हुईं; छोटी-छोटी झाड़ियां।
पौ फटी।
रात कटी।
धूहों से धूएं के
वहां के पहाड़ दिखे।
रामलाल ने कहा,
"भरतकूप वह, अहा।
गुप्त गोदावरी वहां, उस पहाड़ के उधर,
वह देखो, श्रीकामदगिरि सुन्दर;
सावन में जब देखा
मोरों की बादलों से और नीली रही रेखा,
हरे उस पहाड़ पर।
पयस्विनी अररररर
बहती चली जाती है,
त्रेता की बात जैसे कहती चली जाती है।
बड़े - बड़े हरे पेड़
करते हैं जैसे छेड़

पावस-समीर से
लहराते धीर जैसे।
वह है हनुमद्धारा, पञ्चकोसी का पहाड़,
वह वहां है देवाङ्गणा, यहां से पड़ती है आड़
स्फटिक-शिला को, आश्रम
अत्रि-अनसूया का और भी है मनोरम।
स्वच्छ मन्दाकिनी नदी झरनों से यहीं निकली,
पहाड़ों के बीच पड़ी
बादलों में जैसे बिजली।
फूट रहे हैं सस्वर
नये स्रोत, झरने नये, गिरियों को फोड़कर।"
आगे बढ़े।
फले आम बड़े - बड़े झुके हुए देख पड़े
गौदों में या इकले।
आदमी वहां से कुछ चले हुए आ निकले।
गाड़ियां भी जाती थीं,
बैठीं हुई देवियां इठलाती थीं।
सीतापुर पास आया।
एक जगह पेड़ की आ पड़ी घनी-घनी छाया।
अक्कासी आती हुई देखकर
रामलाल बोले एक डंडे से टेककर,
"सर को झुका लीजिएगा,

ज़रा ध्यान दीजिएगा,
जगह ऊंची - ख़ाली है,
कुछ आगे नाली है।"
सीतापुर पारकर पयस्विनी फिर उतरी
गाड़ी पकड़े गली
नये गाँव को चली।
ऊँचा चढ़ती हुई, कहीं पर अड़ती हुई,
हवेली की बग़ल से
आगे बढ़ी गाड़ी वह। लिये हुए कुछ फ़ल से
एक दल यात्रियों का जाता हुआ देख पड़ा।
छोड़कर उसको आगे बढ़ा फिर हमारा लढ़ा।
राह के किनारे खुदरो दरख्त से बँधा हुआ
कच्चा चबूतरा मिला,
कुछ राह घेरे हुए। पत्थर एक रक्खा था
महादेव की जगह पर। भाव मगर पक्का था।—
दख़ल जैसे जमाना चाहता था कोई अपना,
सत्य को जो बनाये हुए था वहाँ कल्पना।
बायें कुछ ही दूरी पर थी छोटी एक कुटिया,
छोटासा बबूल वह उसकी थी लकुरिया।
धौले ने न जाने कैसे यहां ऐसा मारा ज़ोर,
दायें गई गाड़ी, बायें मुड़ी जैसे, एक कोर
कटी चबूतरे की कि कुटिया से निकली

काली एक नारी गाली देती, खाती ढिकली
देखकर चबूतरा।
जैसे कोई अप्सरा
नाचने लगी हो गलियों से भाव बतलाकर
दोनों हाथ फैलाकर।
मैंने देखा, बड़ा मैला
मन उसका समाज से,
चोट खाई हुई वह रामजी के राज से,
शूद्रों को मिला नहीं
जिनसे कुछ भी कहीं।
ढाढस बँधाया मैंने मीठे-मीठे शब्द कहकर,
देखती रही वह आँसुओं की आंखों रह-रहकर।
कुछ दूर बढ़े और रुकने का ठौर था,
गाड़ी खडी हुई, अन्त जहाँ, एक पौर था।
द्वार पर चलकर
रामलाल ने पुकारा। तरुणी ने निकलकर
गाड़ी देखी। बँधी हुई गाय के छू लिये खुर
देखा फिर स्नेहभरी चितवन से जैसे सुर-
वधू हो। फिर चली गई भीतर को धीरे से,
भेजा लड़की को, बोल बोली जो हीरे जैसे—
"चालपाई दाली है,

बैठे कुछ देर हम लड़की व' एकटक
देखती रही हमको छोड़कर बकझक।
बैलों को बांधकर चारापानी करके
स्फटिक-शिला को कुछ तेज़ चाल हम चले
नये गांव की तरफ़ से। देखा वह प्रमोद-वन
दूसरे किनारे से। हनुमद्धारा को देखकर
खिल गया हमारा मन।

वन था पहाड़ पर,
कहा कि दहाड़कर
शेर जब टूटता है,
तब कांप उठता है
जङ्गल, वे सभी पेड़
जैसे कांपते हों भेंड़।
यह बघेलखण्ड है,
बड़ा ही प्रचण्ड है
बाघ यहाँ का। कहा,
आगे वह जानकी ही कुण्ड अब दिख रहा।
हमने नदी पार की,
एक पनचक्की मिली।
अर्जुन के बड़े-बड़े
पेड़ खड़े थे अकड़े।
बन्दर वहां के सब

जैसे बिना - कलरव
कोई हो गृहवास
निष्प्रभ तथा उदास।
घने पेड़, छाया-तल,
स्वच्छ और शीतल जल।
यह है जानकीकुण्ड।
मछलियों के झुन्ड-झुन्ड।
कोई नहीं मारता है।
चारा खिला-खिलाकर सिधारता है।
बड़ी-बड़ी शिलाओं से टकराता हुआ जल
करता है अविराम कलकल-कलकल।
किनारे किनारे बने साधुओं के वरवास
जो कि हैं अनन्य-दास
सीता-रामचन्द्र के
रहते अतन्द्र-से।
रम्य यह स्थल देखते हुए किनारे से
चले हम हारे जैसे
ऊपर ऊपर। एक अच्छा आम का बग़ीचा मिला,
छोटे - छोटे जङ्गली पेड़ों से वन वह रहा खिला।
वहां रामलाल ने दिखाया फिर पहाड़ वह
जहां बैठा था जयन्त दबा। "काढ़कर वह
कौन तीर मारा राम ने जो पहुँचा वहां?

मुझे झूठ जान पड़ता है, कहता यहां।
साधुओं से डर के मारे मैंने नहीं पूछा।
मुझे जान पड़ता है भरा हुआ सब छूंछा।"
रामलाल ने कहा।
मैंने रामलाल को जवाब छोटा-सा दिया।
"होगा जैसा भी किया,"
देखने लगा मैं कहकर उस वन को।
भूल जाता है मन को
देखता हुआ पथिक।
चित्त हुआ समाहित।
ऊंची-नीची गलियों की झाड़ियों में लगा तिन—
सूखा मटमैला दाग।—बाढ़ के याद आये दिन।
सांप बड़े ज़हरीले; टीलों पर रहते हैं,
बिच्छू, लकड़बग्घे. रीछ, चीते, यहां कहते हैं;
पेड़ों पर बिचखोपड़।
चिरौंजी, बहेड़ा, हड़
और पेड़, बड़े बड़े,
जङ्गल - के - जङ्गल खड़े।
बड़े बाघ और दूर रहते हैं.
पानी पीने रात को आते हैं, लोग कहते हैं,
या शिकार के लिए,
या कि भूले - भटके।

चले कुछ और हम,
मन्दाकिनी देख पड़ी भरी हुई मनोरम।
सचमुच ही यहां पानी नीचे से बहुत भरा,
देखकर जी हुआ हरा।
जैसे एक झील हो,
काला - काला स्वच्छ जल बहता सलील हो।
सघन द्रुमों की छांह
शाखों से बढ़ाये बांह।
पानी के बीच उठे पत्थरों पर उगी झाड़ियां,
बैठी हुई सारस ही की जातिवाली चिड़ियां।
उँची-ऊँची उधर हैं पहाड़ियां।
किनारे पर वैसे ही आवास और गुफाएं बनीं,
एक झाड़ी देखी घनी।
यात्री नहाते हुए।
इक्के-दुक्के लोग वहां आते और जाते हुए।
एक बाबा ने कहा, "भौंरादहार है,
"आराम यहां कीजिएगा ?"
खड़ा हुआ स्फटिक - शिला में देखता ही रह
आंख पड़ी युवती पर
आई थी जो नहाकर,
गीली धोती सटी हुई भरी देह में, सुघर
उठे पुष्ट स्तन, दुष्ट मन को मरोड़कर,

आयत दृगों का मुख खुला हुआ छोड़कर।
बदन कहीं से नहीं कांपता।
कुछ भी संकोच नहीं ढांपता।
वर्तुल उठे हुए उरोजों पर अड़ी थी निगाह
चोंच जैसे जयन्त की, नहीं जैसे कोई चाह
देखने की मुझे और,
कैसे भरे दिव्य स्तन, हैं ये कितने कठोर।
मेरा मन कांप उठा, याद आई जानकी।
कहा, तुम राम की,
कैसे दिये हैं दर्शन

कुत्ता भौंकने लगा

आज ठंढक अधिक है।
बाहर ओले पड़ चुके हैं,
एक हफ्ते पहले पाला पड़ा था—
अरहर कुल-की-कुल मर चुकी थी,
हवा हाड़तक बेध जाती है,
गेहूँ के पेड़ ऐंठे खड़े हैं,
खेतिहरों में जान नहीं,
मन मारे दरवाज़े कौड़े ताप रहे हैं
एक दूसरे से गिरे गले बातें करते हुए,
कुहरा छाया हुआ।
ऊपर से हवाबाज़ उड़ गया।

ज़मींदार का सिपाही लट्ठ कन्धे पर डाले
आया और लोगों की ओर देखकर कहा,
"डेरे पर थानेदार आये हैं;
डिप्टी साहब ने चन्दा लगाया है,
एक हफ़्ते के अन्दर देना है।
चलो, बात दे आओ।"
कौड़े से कुछ हटकर
लोगों के साथ कुत्ता खेतिहर का बैठा था,
चलते सिपाही को देखकर खड़ा हुआ,
और भौंकने लगा,
करुणा से बन्धु खेतिहर को देख-देखकर।

झागुर डटकर बोला

गान्धीवादी आये,
कांग्रेसमैन टेढ़े के;
देर तक, गान्धीवाद क्या है, समझाते रहे।
देश की भक्ति से,
निर्विरोध शक्ति से,
राज अपना होगा;
ज़मीदार, साहूकार अपने कहलाएंगे
शासन की सत्ता हिल जायगी;
हिन्दू और मुसलमान
वैरभाव भूलकर जल्द गले लगेंगे;
जितने उत्पात हैं,

नौकरों के किये हुए;
जब तक इनका कोई
एक आदमी भी होगा,
चूल नहीं बैठने की।
इस प्रकार जब बघार चलती
ज़मींदार का गोड़इत
दोनाली लिये हुए
एक खेत फ़ासले से
गोली चलने लगा।
भीड़ भगने लगी।
कान्स्टेब्ल खड़ा हुआ ललकारता रहा।
झींगुर ने कहा,
"चूँकि हम किसान-सभा के,
भाई जी के मददगार
ज़मींदार ने गोली चलवाई
पुलिस के हुक्म की तामीली की।
ऐसा यह पेच है।"

देवी सरस्वती

मानव का मन विश्वजलधि,
आत्मा सित शतदल,
विकच दलों पर अधर
सुहाये सुघर चरणतल;
वीणा दो हाथों में,
दो में पुस्तक, नीरज;
जादू के जीवन के
शोभन स्वर, जैसे सज।
नील वसन, शुभ्रतर
ज्योति से खिला हुआ तन,
एक तार से मिला
चराचर से शाश्वत मन।

हंस चरणतल तैर रहा है
लघूर्मियों पर,
सुनता हुआ तीव्र - मृदु
झंकृत वीणा के स्वर।
सामगीत गाये आर्यों ने
तुम्हें मानकर,
किया समाहित चित्त
ज्ञान - धन तुम्हें जानकर।
एक तुम्हारी अर्चा
सहज ऋचाओं से की,
चरणों पर पुष्पों की
माला की अंजलि दी।
सरल, निरङ्कुश देवी तुम
आर्यों की, विमले,
कौन विश्व में जो
सकाम जीवन में कम ले?
शुभ्रे, कुल रङ्गों की,
रागों की, शब्दों की,
नित्यनवीना हो
वन्दित यद्यपि अब्दों की।
ऋतु के पुष्प
भिन्न गन्धों से बसा दिये है

जग के दुख के मुरझाये मुख
हंसा दिये हैं।

तुम वर्षा हो,
हार बलाकाओं की पातें;
वन की शाखा की
पत्रों से टपकी आंखें;
उतराईं सरिताएँ;
मोर तटों - पर - नाचे;
गुञ्जित-अलि-कलि-गन्ध छोर
अवनी के आंचे;
हंसी - हिंडोले,
सावन के, भादों के;
बालाओं के स्रोत
बहाये सङ्गीतों के
घन - मृदङ्ग - वादन
विद्युत् के करों निपुणतर;
नृत्य परी का जैसे
अर्जुन के अर्जन पर;
जल तरङ्ग; खग-कुल-कलरव

दृश्यावली सुघर;
दर्शक - दर्शिका मनोहर;
जग के सर से
सरस्वती शत - शत रूपों की
निकली क्षिप्र - मन्द - गति,
रङ्कों की, भूपों की।
बीजों से जैसे अङ्कुर,
अङ्कुर से पल्लव,
पल्लव से शाखा, शाखा से,
द्रुम, द्रुम से नव
पुष्प और फूल
ऐसे बढ़े धान खेतों में
जल पर हरे रेत जैसे,
ज्वारी नेतों में।
अरहर, काकुन, सावां,
उड़द और कोदों की
खेती लहराई।
वन आई है आमों की।
निकले कमल सरों में
और करंबुए लहरे;
आये खग; ऊंचे - ऊंचे
पेड़ों पर ठहरे।

खेत निराती हैं बालाएँ
लिये खुरपियां
गाती बारहमासी
सावन और कजलियां।
जुही मुस्कराई। नागन
बलखाई आई
मन्द गन्ध से पुरवाई
डस गई सुहाई।

शरत् पङ्कजों से,
खञ्जन - नयनों से प्रेक्षण,
हरसिंगार के हार
विश्व के द्वार प्रतीक्षण,
नमित शालि से भरी हुई,
सुन्दर - वन - वसना,
श्वेत - शशि - मुखी,
जगती पर मधुराधर - हसना।
कृषकों की आशा से,
श्रम से जीवन - सम्बल,
धन से, धारा से, धान्य से,

समटा पानी खेतों का;
ओठ पर चले हल;
माँसे खेत, किये जो गये
जोतकर मखमल।
डाले बीज चने के, जौ के
और मटर के,
गेहूँ के, अलसी - राई -
सरसों के, कर से।
ऐसे बाह - बाह की वीणा
बजी सुहाई,
पौधों की रागिनी सजीव
सजी सुखदाई।
सुख के आंसू दुखी
किसानों की जाया के
भर आये आंखों में
खेती की माया से।
हरीभरी, खेतों की
सरस्वती, लहराई,
मग्न किसानों के घर
उन्मद बजी बधाई।
खुली चांदनी में डफ
और मजीरे लेकर

बैठे गोल बाँधकर
लोग बिछे खेसों पर,
गाने लगे भजन कबीर के,
तुलसिदास के,
धनुषभङ्ग के, और राम के
बनोबास के।
कतकी में गङ्गा-नहान की
बढ़ी उमङ्गें,
सजीं गाड़ियां, चले लोग,
मन चढ़ती चङ्गें।
मेले में, खेती के
कुछ सामान ख़रीदे,
देखे हाथी-घोड़े-रब्बे,
लौटे सीधे।

कुन्दों के विकास के
शुभ्र हास पर उतरीं
ओस-विन्दुओं से शीतल
हेमन्त की परी
भू की तुम्हीं हरित नभ पर
हो श्वेत मञ्जरी

मन्द - गन्ध - सञ्चरिता
शीता, ऋतता, किन्नरी।
बाग़ - बाग़, वन - वन, रून की
सुगन्ध - मद पीकर
झूम रही हो हिम - शीकर
पल्लव - पल्लव पर
स्निग्ध पवन में;
स्य - शीर्ष से उठी हुई तुम
मटर - पुष्प के सौरभ - धन से,
लुटी हुई तुम,
सरसों के पीले पुष्पों की
साड़ी पहने,
अलसी के नीले फूलों की
रेखा जिसमें।

प्रखर शीत के शर से
जग को बेधा तुमने,
हरीतिमा के पत्र - पत्र को
छेदा तुमने।
शीर्ण हुई सरिताएँ;
साधारण जन ठिठुरे;

रहे घरों में जैसे हों,
बाग़ों में गिठुरे।
छिना हुआ धन, जिससे
आधे नहीं वसन तन,
आग तापकर
पार कर रहे हैं गृह-जीवन।
उनको दिखा रही हो,
तारे टूट रहे हैं
पत्तों के, डाल के
सहारे छूट रहे हैं।
जीवन फिर दूसरा
उन्हें पल्लवित करेगा,
किसी अस्त्र से
अन्न-वस्त्र के दुःख हरेगा।
ज़मीदार की बनी,
महाजन धनी हुए हैं,
जग के मूर्त पिशाच
धूर्तगण ग़नी हुए हैं।
विश्वरूपिणी तुम हो,
तुम्हें मूर्ति में रचकर
पूजा की वसन्त के दिन
दीनता-विकच-कर,

गीत और वाद्य से
बड़ी सामाजिकता की,
फूलों की अञ्जलि दी,
गङ्गा की सिकता की
वेदी रची; मन्त्र पढ़कर
घृत - यव लेकर कर
किया स्वस्त्ययन, हवन,
विसर्जन अन्तिम सुन्दर।

नव पल्लवित वसन्त
धरा पर आया सुखकर।
फूटी तुम नव-किसलय - दल से
वृन्त - वृन्त पर।
कूजित पिक-उर-मधुर-कण्ठ;
कुण्ठा सब टूटी;
मुक्त समीरण से धीरता
धरा की छूटी।
पके खेत, सोने के
जैसे अञ्चल लहरे;
नव मनोज के मनोभाव
लोगों में घहरे।

प्रतिसन्ध्या समवेत हुए
ग्रामीण सभ्यजन
ढोलक और मजीरे पर
करते हैं गायन;
फाग हो रहा, उठा रहे हैं
धुन धमार की,
होली, चैती, लेज,
गा रहे हैं सवांर की।
बौरे आमों की सुगन्ध
धरती पर छाई,
नये वर्ष का हर्ष भरा,
चांदनी सुहाई।
रबी कटी आम के तले
खलिहान लगाया,
चना, मटर, जौ, गेहूँ, सरसों
कटकर आया।
पड़ी चारपाई, जिस पर
बैठा तकवाहा
चूल्हा वहीं कहीं लगवाया
जिसने चाहा
ज़रा दूर मेड़ के किनारे,
जैसे बस्ती

बसी, लगे खलिहान,
सुवेशा जैसे मस्ती।

ग्रीष्म तापमय, लू की
लपटों की दोपहरी
झुलसाती किरणों की,
वर्षों की आ ठहरी,
तुम हो शीतल कूप-सलिल,
जामुन-छाया-तल,
लदे आम के बाग़ों से
जीवन का सम्बल।
गेहूँ, चने, मटर, मड़कर
घर आये। अतिशय
दिखा ग्राम में, जहां नहीं
साधन या सञ्चय;
नहीं दीक्षा जन-समाज की,
नहीं प्रीतिकर
शासन, समाराधना
वहीं और भी दुस्तर।
शहरों की बिजली से
झुलसी जनता की रट,

उठते क़दमों की,
भगती तेज़ी से सरपट,
रुद्र ताल की, भैरव जैसी,
रण की छाया,
नाच रही हो भिन्न जगत की
जैसे काया।
हर चक्र के विवर्तन से
वर्ष का जन्म फल
उगा रहा है गति के
क्रम - उपक्रम का शतदल;
ऊपर तुम नीलाम्बर -
आभा में सित तन्वी
सायक चढ़ी हुई हो
जनता का जी धन्वी।
वाल्मीकि का क्रौञ्च - मिथुन;
व्यास का जन्म - फल;
कालिदास की दशा;
हर्ष का मर्षण उत्कल;
नवालोक मञ्जुलतर;
बकुलों से जैसे तुम
टूटीं शब्द - शब्द पर,
छन्द - छन्द पर, कुंकुम

उड़ते हैं पराग,
झङ्कारी अन्तस्तल से,
जीवन की वीणा के
तारों के मङ्गल से।
राग - रङ्ग की रामायण
दुख की गाथा से
पूरी हुई; संभाले
जैसे स्वर भाषा के
अधिक मनोहर, वीरजाति के
चित्र सुघरतर
बृहद्रूप से खिले हुए,
मृदु-मृदु वल्कल पर
खिली सभ्यता।
महाभारतीया कुछ बदली,
जैसे भिन्न रूप की,
भिन्न गन्ध की कदली,
सीता और द्रौपद्री,
अर्जुन और राम से,
एक और बहु पतियों के
व्रत और काम से।
भारत की प्रान्तीय
सभ्यता का आलेखन,

राजनीति का जीवन,
जगती का सम्मोहन।
श्री-समृद्धि का कालिदास में
अमृतास्वादन,
साहित्यिकता में
धार्मिकता का सम्वादन।
हर्ष प्रौढ़ता की पीढ़ी,
कविकम्बु स्वयम्भू,
रामायण के मौलिक,
प्राकृत - शम्भु - स्वयम्भू—
भिन्न रूप की राम-कथा के
कविर्मनीषी,
श्रीतुलसी तक सहस्राब्दि के
रविर्मनीषी।
उसी छन्द में उसी प्रकार
किया है अन्तर
तुलसिदास ने महाकाव्य
लिखकर मन्वन्तर,
भक्ति - भावना से रचना
आलोक - समन्वित
हुई उसी स्वाधीन
चेतना से उत्कल-चित।

सूरदास के गीत,
रसों के स्रोत निरन्तर,
फूटीं सरिताएं,
उमड़ा शशधर से सागर।
मीरा की मानसी
गीतिका सहृदयता की
छवि से भरी हुई
निरवधि कलियों की राखी।
ज्ञानालोक विकीर्ण हुआ
कबीर से, निर्झर
फूटे कितने, ज्ञानदास के,
दादू के स्वर।
तुम्हीं चिरन्तन जीवन की
उन्नायक, भविता,
छवि विश्व की मोहिनी,
कवि की सनयन कविता।

तिलाञ्जलि

धूसर सान्ध्य समय विषमय
भरता है क्रन्दन;
अन्तरीक्ष से झरता है
निस्तल अभिनन्दन
नैसर्गिक आत्माओं का;
प्रशमित नारी - नर
चले आ रहे हैं
अरथी के साथ मार्ग पर
चरण - मन्द; भाषा के जैसे
अश्रु - भार रथ,
स्रस्त-वेश, दिग्देश - ज्ञान - गत,
शिरश्चरण - श्लथ,

मुक्ति - वर्ग नागरिक,
सर्ग देश के भाव के,
मुदे हुए आश्वासन,
श्वसन विसर्ग - स्राव के,
हृदयोच्छ्वसित वाष्प से
होकर प्रहत निरन्तर
ऊर्ध्व और अध प्रशमन
और क्षोभ के हैं स्वर।
कांग्रेस के सेनानी—
वीर सेवकों का दल
नारे लगा रहा है
बढ़ता हुआ धैर्य - बल।
घने बरगदों की कतार,
पर - फड़काते खग,
आंख मूद लेने के लिए
विकल सारा जग,
यात्री गङ्गास्नान के लिए
दूर ज़िले के
निकले हैं मज़दूर
काम से छुटे क़िले के;
सुनकर नेहरू जी के
बहनोई की अरथी,

हाथ मले, आह की
और टकटकी बांध दी।
पुल के पार रास्ता
बायें कटा दूसरा
स्टेशन से लगकर
गङ्गा के बांध को गया;
चले उसीसे, फिर
रेते से होकर, तटपर;
रची चिता भव्यतर,
बत्तियां जलीं तिमिरहर।
माघ, मकर - संक्रान्ति,
रात्रि का प्रथम प्रहर जब
सविध कृत्य पूरे करके
लौटे सत्वर सब।
जलती हुई चिता तब भी
उठती लपटों को
और स्पष्टतर करती हुई
रहस्य - तटों को
लहक रही है अपराजेय
वीर को लेकर—
बहुभाषाविद्, गायक, कवि,
तेजस्वी, तत्पर,

भारत का गर्वित उत्तर,
जनता का नेता,
मानवता का शिरोरत्न,
बहु - ग्रन्थ - प्रणेता।
आई याद विजयलक्ष्मी,
स्वरूप - जीवन का
नवोन्मेष, बैरिस्टर
आर० एस० पण्डित, जिनका
स्पर्धित जीवन रहा,
समर्थित वचन दे दिया
गान्धी जी को, (असहयोग में
भाग फिर लिया,)
मोतीलाल राष्ट्रपति,
वह व्याह से प्रथम ही
देखा जब स्वरूप को
कवि - श्री रवीन्द्र को भी।
वीर जवाहर, टन्डन
और शेरवानी से
एक दर्प जैसे जीवन के
घिरे हुए थे।
वह 'स्वातन्त्र्य - दिवस',
'विजया - लक्ष्मी' - निर्वाचन,

वह 'राजर्षि', 'महात्मा' की
उपाधियां, वितरण।
कहे कौन, वह सत्य
कहां से कहां गया, क्या,
और जवाहर का रिश्ता,
दृढ़ कहां रहा, क्या?
की प्रदक्षिणा मैंने,
सबसे पीछे चलकर,
नमन किया करबद्ध
राष्ट्र का श्रेष्ठ विजय - वर।

युगावतार परमहंस श्रीरामकृष्णदेव के प्रति

पराधीन भारत की प्रज्ञा
क्षीण हुई जब,
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, वर्णत्रय
पश्चिम में गत,
जागे पराशक्ति के वैभव
स्वप्रकाश तब,
आरपार के, बिना तार के
नाद अनाहत।
हे समृद्ध, बहुविध साधन से
सिद्ध हुए तुम,
अक्षर विविध रूप के, एक
विन्दु में अवसित;

अनायास हे, स्नेह - पाश से
विद्ध हुए तुम,
अरचित, रुचि की रचनाओं में
हुए समाहित।
अभिनन्दन के नूतन
बन्दनवार बने तुम,
तरुणों के उच्छ्वास करों से
उत्थित होकर,
जैसे बादल में विद्युत,
व्यञ्जना घने तुम,
खोई सृष्टि सकल
नव-जल-धारा में रोकर।
फिर नूतन प्रभात में
नूतन कर से आये,
ज्योतिर्मय, फिर हंसकर
दिङ्मण्डल पर छाये।

चौथी जूलाई के प्रति

काले बादल कट गये आकाश से
रात को बांधे हुए थे जो समा—
पृथ्वी पर तानी थी चादर, इस तरह।
आंख खोली, जादू की लकड़ी फिरी।
चिड़ियां चहकीं, साथ फूलों के उठे
सर,—सितारे जैसे चमके ताज के—
ओस के मोती लगे, स्वागत किया
क्या तुम्हारा झूमकर झुककर। खुली
और फैली दूरतक झीलें, खुशी
जैसे आंखें कमलों की फाड़े हुए
दर्श करती हैं तुम्हारा हृदय से

कुल निछावर, ज्योति के जीवन, नया
आज अभिनन्दन तुम्हारा, धन्य है।
आज रवि, स्वाधीनता की फूटी किल,
राह देखी विश्व ने, कैसे खिली,
देशकालिक खोज की, कैसे मिले;
छोड़ा है घर, मित्र, छोड़ी मित्रता।
खोजा तुमको, आवारा मारा फिरा,
गुज़रा दहशत के समन्दर से, कभी
सघन पहले के गहन वन से, लड़ा
हरक़दम पर प्राणों की बाज़ी लिये।
वक्त वह, हासिल निकाला काम का,
प्यार का, पूजा का, जीवनदान का;
हाथ उठाया, सँवरकर पूरा किया।
फिर तुम्हींने स्वस्ति की बांधी कमर
जन्मगणों पर मुक्ति की डाली किरण।
देव, चलते ही चलो बेरोकटोक,
विश्व को दुपहर न जबतक घेर ले,
कर तुम्हारा हर ज़मी जबतक न दे,
स्त्री-पुरुष जबतक न देखें चाव से,—
बेड़ियां उनकी कटीं, उल्लास की,
जां नई जबतक न समझें आ गई।

विवेकानन्द जी की अंगरेज़ी कविता का अनुवाद।

काली माता

छिप गये तारे गगन के,
बादलों पर चढ़े बादल,
काँपकर घहरा अँधेरा,
गरजते तूफ़ान में, शत
लक्ष्य पागल प्राण, छूटे
जल्द कारागार से—द्रुम
जड़-समेत उखाड़कर, हर
बला पथ की साफ़ करके।
शोर से आ मिला सागर,
शिखर लहरों के पलटते
उठ रहे हैं कृष्ण नभ को,

स्पर्श करने के लिये द्रुत, शीघ्र
किरण जैसे अमङ्गल की,
हर तरफ़ से खोलती है
मृत्युछायाएँ सहस्रों
देहवाली घनी काली।
आधि-व्याधि बिखेरती, ऐ,
नाचती पागल हुलसकर
आ, जननि, आ, जननि आ, आ!
नाम है आतङ्क तेरा,
मृत्यु तेरे श्वास में है,
चरण उठकर सर्वदा को
विश्व एक मिटा रहा है,
समय तू है, सर्वनाशिनि,
आ, जननि, आ, जननि, आ, आ!
साहसी, जो चाहता है
दुःख, मिल जाना मरण से,
नाश की गति नाचता है,
तू उसीके पास आई।

स्वामी विवेकानन्द जी की अंगरेज़ी कविता का अनुवाद

छलांग मारता चला गया

ज़मीदार के सिपाही की
लाठी का गूला, लोहाबंधा,
दरवाज़े गढ़ा कर जाता है।
लोगों के सर
जैसे ढाल देखती आंखों के नीचे गड़े हों।
निगह कभी भले-भले
उठने न देनेवाली।
हाथ-पैर किसी तरह मानकर नहीं चले।
अगर किसी जोत या बाग़ की मेड़ को
छूता भी पेड़ हो,
बढ़ा हो किसान भी अधिकार के लिए

गूला उस पेड़ के
तने पर रखकर वह
डट - डटकर देखता है।
आंखों में उस अवसर पर,
धुंधा छा जाती है,
आदमी जैसे कमान,
बन जाता है किसान।
सामाजिक और राजनीतिक सहारे कुल
छुटकर भग जाते हैं।
धर्म - कर्म, लोग - जन
जान पर खेलते हैं।
राक्षस विशालकाय
आध्यात्मिक नसों का
खून चूसता हुआ।
पास का मेढ़क थाले के पानी से उठकर
मूत-मूतकर छलांग मारता चला गया।

डिप्टी साहब आये

बदलू अहिर के दरवाज़े भीड़ है।
गोड़इत कह रहा है,
"ऐसे-वैसे नहीं हैं,
डिप्टी साहब बहादुर तशरीफ ले आये हैं।"
डरकर दबकर बदलू गोड़इत को देखता है।
फिर खँखारकर सारे गाँव को गूँजता हुआ
गोड़इत कह रहा है,
"अहिर के मूसर, ये दई के दूसर हैं,
इनसे एक घाट में भेड़ और भेड़िये
बिना वैरभाव के पानी पी रहे हैं।
इनके साथ और अफ़सरान हैं,
जैसे दारोग़ा जी,
बीस सेर दूध दोनों घड़ो में जल्द भर।"
"अरे भाई, सुन तो लो," बदलू कह रहा है,

"हम भी देख रहे हैं, लछमिन का बाग़ है,
ज़मीदार अमले हैं, बनजर कह रहे हैं,
लछमिन को कहते हैं,
दोगली लड़की है.
सारा गाँव जानता है,
रघुवर की कोई नहीं।
इसीलिए आये हैं।
तुम भी कुछ कहोगे ?"
"जानता नहीं है बे,"
गोड़इत ने पैर रोपा,
'ज़मीदार के हैं हम,
मालिक का भला जहां वहां है हमारा भला।"
जमकर बदलू ने बदमाश को देखा, फिर
उठा क्रोध से भरकर
और एक घूंसा तानकर नाक पर दिया।
गोड़इत प्रेमीजन था,
ज़मीं चूमने लगा।
तबतक बदलू के कुल तरफ़दार आ गये—
मन्नी कुम्हार, कुल्ली तेली, भकुआ चमार,
लुच्छू नाई, बली कहार, कुल टूट पड़े,
कुछ नहीं हुआ, कुछ नहीं हुआ, होने लगा।
बदल गया रावरङ्ग,
सब लोग सत्य कहने के लिए तुल गये।
तबतक सिपाही थानेदार के भेजे हुए
आये और दाम दे-देकर माल ले गये।
सारा गाँव बाग़ की गवाही में बदल गया,
सही-सही बात कही।

वर्षा

घने - घने बादल हैं,
एक ओर गड़गड़ाते;
पुरवाई चलती है;
जुही फूलों से भरी;
दूरतक हरियाली ज्वार की, अरहर की,
सन, मूग, उड़द और
धानों के हरे खेत;
दूर के पहाड़ों की और घनी नीलिमा;
तालों में करँबुए;
कोकनद खिले हुए;
ढोर चरते हुए;

कहीं हिरनों का झुंड;
आम पकते हुए;
बागों में लगी भीड़
मर्दों की औरतों की,
बच्चों की, बुड्ढों की;
आम बीन - बीनकर
पत्तों बांटते हुए
आमों के हिस्सेदार
गांव-गांव के किसान।
खाने को एक-एक हिस्सा लिये हुए
ज़मींदार लोगों से।
नाले बहते हुए,
नदियां तराई लिये।
घने कास उगे हुए।
युवक अखाड़ों में और ज़ोर करते हुए।
देश के प्रतीक सभी,
देश की भलाई की बातें सोचकर करते।

कैलाश में शरत्

चले हम घोड़े पर।
संन्यासिश्रेष्ठ श्रीविवेकानन्द जी भी हैं,
श्रीमती श्रीमाताजी और शिष्यशिष्यावर्ग।
साथ श्रेष्ठ राजपुरुष, नागरिक भारत के।
अफ़गानिस्तान की सीमा को पार करके
घोड़ों को छोड़ दिया।
क्योंकि पथ दुर्गम वह, घोड़ों के योग्य नहीं।
चढ़े बड़े बकरों पर।
पथदर्शक साथ हैं, शासक भी वहां के।
तातारी वीरों को देखा, मुग्ध हो गये।
वहां का इतिहास विश्वविख्यात है,

कुछ दूर आगे चलो, मंगोलिया देश है।
यहां बाद को गये।
यहींके वीर अटीला के घोड़ों की तेज़ टाप
रोम तक बजी थी; नष्ट हो गया था साम्राज्य;
पददलित गान्धार, भारत, पारस्य आदि
सभ्यतम देश सब, वशवेश हुए थे;
यहींका चङ्गेज़, यहींका था तैमूर लङ्ग,
बाबर यहींका, आविष्कार तोपों का किया।
हवा में स्वभाव ही से वीरदर्प भरा हुआ।
पर्वत के शीश पर ऊँची समतल-भूमि
घोड़ों की टापों से आग उगलती हुई।
अस्तु, हम आगे के लिए सब छोड़कर
कैलाश को मुड़े।
आये उस स्थान पर।
तातारी दर्शक ने केवल "कैला" कहा।
पर्वतों के ऊँचे कई शृङ्ग एकसाथ हैं,
हिमाच्छादित "कैला" है सबसे विशालकाय।
सबसे ऊँचा उठा, अति-शोभन, मनोरम।
पर्वतों की श्रेणी यह औरों से भिन्न है।
जितने ऊंचे हैं ये, उतने मोटे नहीं।
देखा है एवरेस्ट,
काञ्चनजङ्घा, गौरीशङ्कर पर्वत समूह;

आल्प्स, ककेसस, अराल;
किन्तु ऐसा समा, ऐसा दृश्य कहीं भी नहीं;
संसृत में मूर्तिमान जैसे समाधि हो;
दुर्गा की रूपरेखा यहींसे ली गई हो।
मन अपने आप स्थिर होकर मिट जाता है।
जिस स्थल के लिए कहा,
काम नाश पाता है,
जैसे यह वही हो।
पदतल राक्षस-ताल,
महिषासुर का प्रतीक :
आगे मान - सरोवर,
इससे मिला हुआ।
चोटियों की बर्फ़ पर
किरनें जब पड़ती हैं,
सप्तवर्णी रश्मियां
पड़ती हैं तालों पर;
प्रतिक्षण रेशमी रङ्ग बदलता हुआ,
कभी पीला, कभी नीला,
कभी इन्द्रधनुषी है,
छायापात जैसा हुआ;
जैसे किरीटिनी
प्रकृति क्षण-क्षण बाद

साड़ी बदलती हो;
उसके शरीर के
भीतर हमलोग हों।
गिरि के पदमूल में
कोटि - कोटि फूल खिले;
रश्मि के रङ्गों के,
मुख्यतः पीत - नील,
अतिशय सौरभ उनमें।
आगे काश्मीर पड़ा,
होकर हम आये थे,
वह बहुत फीका पड़ा।
ऐसा वायुमण्डल संसार में न फिर मिला।
सारे देशों की हमलोगों ने यात्रा की।
किश्तियां डाली गईं,
उनपर चढ़-चढ़कर हम
मानसर पर चले।
सर्वोत्तम स्थान यह।
इन्दीवर करोड़ों,
करोड़ों अन्य कमल, कोकनद, शतदल
ऐसी सुगन्ध की मदिरा न फिर मिली।
उन्मद विहार किया।
एक ओर सिन्धु, एक ओर ब्रह्मपुत्र का

उद्गम सुहावना।
एक नदी और है
यहांसे निकली हुई।
दिव्यता के भीतर हम
दिव्य बने ही रहे।
सान्ध्य समय पार हुआ,
मनोहर रात आई।
नाव पर वहीं का
भोजन, जो मेष-मांस,
करके शुचि चन्द्र का
स्वागत करने लगे।
गीत-वाद्य होता रहा।
सब जन प्रसन्न हैं।
ऐसा दृश्य जीवन में
और कभी नहीं दिखा।
शरत्-काल; कमलों पर
आया विरोधाभास,
उतरी है चांदनी,
मुद चले इन्दीवर,
कोकनद, शतदल;
पर अति-विकसित जो
ज्यों-के-त्यों रह गये।

मदिरा सुगन्ध की
ज्यों-की-त्यों ढलती हुई।
चन्द्र आकाश पर पूरी तरह निकल आया।
स्निग्ध वह चन्द्रिका
उतरी सरोवर पर
स्वर्ग की अप्सरा
स्नान करने के लिए
लोक-लोचनों से परे
जिसकी छवि देखकर
कमल वे मुद गये।
सब कुछ स्वर्गीय है,
लोग-जन कहा किये।

ख़ून की होली जो खेली*

युवकजनों की है जान;
ख़ून की होली जो खेली।
पाया है लोगों में मान,
ख़ून की होली जो खेली।
रंग गये जैसे पलाश;
कुसुम किंशुक के, सुहाये.
कोकनद के पाये प्राण;
ख़ून की होली जो खेली।
निकले क्या कोंपल लाल,
फाग की आग लगी है,

*'४६ के विद्यार्थियों के देशप्रेम के सम्मान में—

फागुन की टेढ़ी तान,
ख़ून की होली जो खेली।
खुल गई गीतों की रात,
किरन उतरी है प्रात की;—
हाथ कुसुम - वरदान,
ख़ून की होली जो खेली।
आई सुवेश बहार,
आम - लीची की मञ्जरी;
कटहल की अरघान,
ख़ून की होली जो खेली।
विकच हुए कचनार;
हार पड़े अमलतास के;
पाटल - होठों मुसकान,
ख़ून की होली जो खेली।

महगू महगा रहा

आजकल पण्डित जी देश में बिराजते हैं।
माताजी को स्वीज़रलैंड के अस्पताल,
तपेदिक़ के इलाज के लिए छोड़ा है।
बड़ेभारी नेता हैं।
कुइरीपुर गांव में व्याख्यान देने को
आये हैं मोटरपर
लन्डन के ग्रैज्युएट,
एम० ए० और बैरिस्टर,
बड़े बाप के बेटे,
बीसियों भी पर्तों के अन्दर, खुले हुए।
एक-एक पर्त बड़े - बड़े विलायती लोग।
देश की भी बड़ी - बड़ी थातियाँ लिये हुए।

राजों के बाजू-पकड़, बाप की वकालत से;
कुर्सी रखनेवाले अनुल्लंघ्य विद्या से
देशी जनों के बीच;
लेंड़ी ज़मीदारों को आंखों तले रक्खे हुए;
मिलों के मुनाफ़े-खानेवालों के अभिन्न मित्र;
देश के किसानों, मज़दूरों के भी अपने सगे
विलायती राष्ट्र से समझौते के लिए।
गले का चढ़ाव बोर्झुआज़ी का नहीं गया।
धाक, रूस के बल से ढीली भी, जमी हुई;
आंख पर वही पानी;
स्वर पर वही संवार।
गांव के अधिक जन कूली या किसान हैं;
कुछ पुराने परजे जैसे धोबी, तेली, बढ़ई,
नाई, लोहार, बारी, तरकिहार, चुड़िहार,
बेहना, कुम्हार, डोम, कुइरी, पासी, चमार,
गङ्गापुत्र, पुरोहित, महाब्राह्मण, चौकीदार;
कामकाज, दीवाली-जैसे परबों के दिन
मनो ले जाने वाले पिछली परिपाटी से;
हुए, मरे, ब्याह में दीवाला लाते हुए,
ज़मीदार के वाहन।
बाक़ी परदेश में कौड़ियों के नौकर हैं
महाजनों के दबैल,

स्वत्व बेचकर विदेशी माल बेचनेवाले;
शहरों के सभासद।
ऐसे ही प्रकार के प्राकार से घिरे
लोगों में भाषण है।
जब भी अफ़ीम, भांग, गांजा, चरस, चन्डू, चाय,
देशी और विलायती तरह - तरह की शराब
चलती है मुल्क में,
फिर भी आज़ादी की हांक का नशा बड़ा;
लोगों पर चढ़ता है।
विपत्तियां कई हैं घूंस और डंडे की;
उनसे बचने के लिए
रास्ता निकाला है, सभाओं में आते हैं
गांवों के लोग कुल।
एक-एक आ गये।
पण्डितजी कांग्रेस के चुनाव पर बोले :
आज़ादी लेते हैं, एक साल और है;
आततायियों से देश पिस-पिसकर मिट गया;
हमको बढ़ जाना है;
चैन नहीं लेना है जबतक विजयी न हों।
जनता मन्त्रमुग्ध हुई।
ज़मींदार भी बोले जेल हो - आनेवाले,
कांग्रेस - उम्मीदवार। सभा विसर्जित हुई।

महगू सुनता रहा।
कम्पू को लादता है लकड़ी, कोयला, चपड़ा।
लुकुआ ने महगू से पूछा, "क्यों हो महगू, कुछ
अपनी तो राय दो?
आजकल, कहते हैं, ये भी अपने नहीं?"
महगू ने कहा, 'हां, कम्पू में किरिया के
गोली जो लगी थी,
उसका कारण पण्डितजी का शागिर्द है;
रामदास को कांग्रेसमैन बनानेवाला,
जो मिल का मालिक है।
यहां भी वह ज़मीदार, बाजू से लगा ही है।
कहते हैं, इनके रुपये से ये चलते हैं,
कभी-कभी लाखों पर हाथ साफ़ करते हैं।"
लुकुआ घबरा गया। "भला फिर हम कहां जायँ?"
महगू से प्रश्न किया।
महगू ने कहा, "एक उड़ी ख़बर सुनी है,
हमारे अपने हैं यहां बहुत छिपे हुए लोग
मगर चूँकि अभी ढीला-पोली है देश में,
अखबार व्यापारियों ही की सम्पत्ति हैं,
राजनीति कड़ी से भी कड़ी चल रही है,
वे सब जन मौन हैं इन्हें देखते हुए;
जब ये कुछ उठेंगे,

और बड़े त्याग के निमित्त कमर बांधेंगे,
आयेंगे वे जन भी देश के धरातल पर,
अभी अख़बार उनके नाम नहीं छापते।
ऐसा ही पहरा है।"
"तो फिर कैसा होगा?" लुकुआ ने प्रश्न किया।
"जैसा तू लुकुआ है, वैसा ही होना है,
बड़े-बड़े आदमी धन-मान छोड़ेंगे,
तभी देश मुक्त है,
कवि जी ने पढ़ा था, जब तुम बदले नहीं;
अपने मन में कहा मैंने, मैं महगू हूँ,
पैरों की धरती आकाश को भी चली जाय,
मैं कभी न बदलूंगा, इतना महगा हूँगा।"

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पङ्क्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१	नवीं पङ्क्ति होगी	×	गुल खिला
४५	पहली	हो	हों
५२	अन्तिम	तन	स्तन
५६	अन्तिम	है	हैं
६०	ग्यारहवीं	"हंसी-हिंडोले"	"भूले हंसी-हिंडोले"
६१	ग्यारहवीं	फूल	फल
८२	अट्ठारहवीं	अर	हर
८४	छठी	आधि	आधि
,,	ग्यारहवीं	चख	चरण

———